Kumaara Sambhava
संस्कृत साहित्य सौरभ
502
कुमारसंभव

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

२१

कालिदास-कृत

कुमारसंभव

श्री सुशील
द्वारा
कथासार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१९५७

सत्साहित्य प्रकाशन
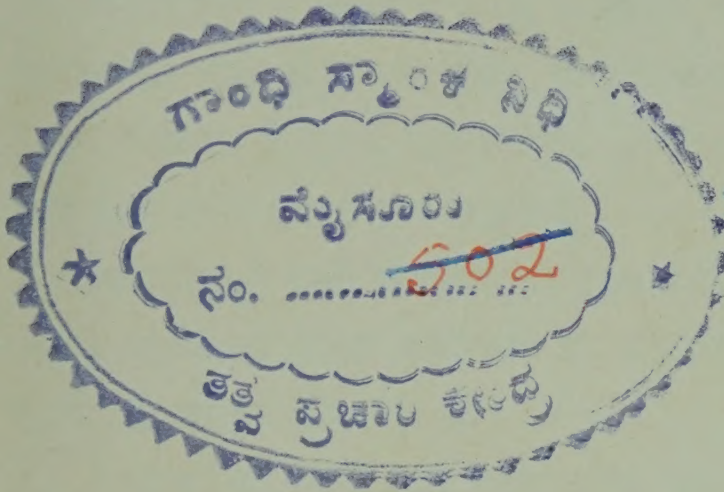
प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिंदी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का संपादन हिंदी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा है, हिंदी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चन्द महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

भूमिका

कालिदास के काव्य ग्रंथों में ऋतुसंहार, कुमारसंभव, रघुवंश और मेघदूत विशेष प्रसिद्ध हैं। रघुवंश और मेघदूत का कथा-सार पाठकों तक पहले ही पहुंच चुका है। अब कुमारसंभव भी प्रकाशित किया जा रहा है। कुमारसंभव महाकाव्य है। इसके १८ सर्ग मिलते हैं, पर कहते हैं कि पहले आठ ही कालिदास ने रचे हैं। कुछ भी हो, साहित्यिक दृष्टि से कुमारसंभव का स्थान बहुत ऊंचा है। कुछ विद्वान तो इसे रघुवंश से भी बढ़कर मानते हैं। इस महाकाव्य से कालिदास की आध्यात्मिक विचारधारा का परिचय मिलता है। बिना काम-वासना को जलाये, बिना सच्चे तप के, प्रेम की प्राप्ति नहीं होती। काम और प्रेम में क्या अंतर है, यह इस महाकाव्य में बहुत सुंदरता से समझाया गया है।

इस कहाकाव्य में शिव-पार्वती के विवाह की कथा है। इन्हींके पुत्र कार्त्तिकेय थे, जो देवताओं के सेनापति बने और जिन्होंने तारक राक्षस का संहार किया। इस महाकाव्य में करुण, शृङ्गार और वीर रस का अद्भुत समन्वय हुआ है। प्रकृति-वर्णन भी बड़ा अनूठा है। कवि प्रकृति के विज्ञान से भी परिचित है। नारी के रूप का जो शिष्ट वर्णन कुमारसंभव में है, वह भी सुंदर है। उपमाएं तो अद्भुत हैं। संक्षेप में कालिदास का सारा प्रयत्न प्रेम और समाधि दोनों को एक जगह दिखाने का है। वह शिव के अनन्य भक्त थे, इसीलिए उन्होंने शिव के रूप में दिव्य नायक का दिव्य वर्णन किया है। वैसे भी यह महाकाव्य बड़ा रहस्यमय है। इसके अनेक अर्थ हैं।

—सम्पादक

कुमारसंभव

: १ :

भारत के उत्तर में हिमालय नाम का एक बहुत बड़ा पर्वत है। वह अनगिनत चमकीले रत्नों और जड़ी-बूटियों का भंडार है। उसकी कुछ चोटियों पर गेरू आदि धातुओं की बहुत-सी रंग-बिरंगी चट्टानें हैं। उनके रंग की छाया जब बादलों पर पड़ती है तो वे संध्या के बादलों-जैसे दिखाई पड़ने लगते हैं। कुछ चोटियां तो इतनी ऊंची हैं कि बादल भी उनतक नहीं पहुंच पाते। यहां भोजपत्र और देवदारु के पेड़ हैं। ऐसे छेदवाले बांस भी बहुत हैं जो, उनमें हवा भर जाने पर, अपने-आप बजने लगते हैं। लंबी-लंबी गुफाओं में दिन में भी अंधेरा छाया रहता है। और ऊंची चोटियों पर जो ताल हैं, उनमें कमल खिले रहते हैं। उन कमलों को सप्तर्षि पूजा के लिए तोड़कर ले जाते हैं। चूंकि इस पर्वत पर यज्ञ में काम आनेवाली सामग्री पैदा होती है और इसमें धरती को संभाले रखने की शक्ति है, इसलिए ब्रह्माजी ने इसे उन पर्वतों का स्वामी बना

दिया है, जिन्हें यज्ञ में भाग पाने का अधिकार है।

इसी हिमालय की पत्नी का नाम मेना था। वह इसीके समान ऊंचे कुल और शीलवाली थीं। उनके मैनाक नाम का एक प्रतापी पुत्र पैदा हुआ। मैनाक के बाद उन्होंने एक कन्या को जन्म दिया। वह कन्या पहले जन्म में महादेवजी की पत्नी सती थी। इस जन्म में पर्वतराज की पुत्री होने के कारण उसे पार्वती कहकर पुकारने लगे। जन्म के समय उसके मुख पर तेज था। उसके अंग बड़े सुंदर थे। चंद्रमा की कला के समान वह धीरे-धीरे बढ़ने लगी। वह कभी गेंद खेलती, कभी गुड़िया बनाती। और इसी प्रकार खेल-खेल में उसका बचपन बीत गया। उसने जब पढ़ना शुरू किया, तो पिछले जन्म की सारी विद्याएं उसे अपने-आप याद आ गईं।

जब वह जवान हुईं तो उनका शरीर खिल उठा। उनकी बड़ी-बड़ी आंखें नील कमल के समान चंचल थीं और भुजाएं सिरस के फूलों से भी कोमल। उनके लाल-लाल ओठों पर फैली हुई उनकी मुसकान का उजलापन ऐसा सुंदर लगता था, जैसे लाल कोंपल में श्वेत फूल रखा हुआ हो। वह बोलती थीं, मानो अमृत झरता था। उनको देखकर ऐसा लगता था,

जैसे ब्रह्माजी धरती की सारी सुंदरता एक साथ देखना चाहते थे।

एक बार घूमते-घूमते नारदजी हिमालय के पास आये। वहां उन्होंने पार्वती को देखा और भविष्य-वाणी की कि उनका विवाह महादेवजी के साथ होगा। यह सुनकर उनके पिता बड़े प्रसन्न हुए। वर खोजने जाने की आवश्यकता नहीं रही। फिर भी वह स्वयं पार्वती के विवाह का प्रस्ताव लेकर महा-देवजी के पास नहीं गये। सती के मरने के बाद महादेवजी ने दूसरा विवाह नहीं किया था बल्कि तब से वह तप ही कर रहे थे। हिमालय अपनी बेटी को लेकर वहीं पहुंचे। पहले तो उन्होंने स्वयं उनकी पूजा की। फिर पार्वती को आज्ञा दी कि वह महा-देवजी की पूजा करे। पार्वती वहीं रहकर नियम से उनकी सेवा करने लगीं।

: २ :

उन्हीं दिनों तारक नाम का राक्षस देवताओं को बहुत सता रहा था। इसलिए वे सब ब्रह्माजी के पास पहुंचे और उनकी स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी उनकी स्तुति से बड़े प्रसन्न हुए। बोले, "मैं आपका स्वागत करता हूं; पर यह तो बताइये कि आप इतने उदास क्यों

दिखाई दे रहे हैं ? आप किसलिए मेरे पास आये हैं ?" यह सुनकर इंद्र ने देवगुरु वृहस्पति को बोलने का इशारा किया। वृहस्पति बोले, "हे ब्रह्मन् ! आप सब-कुछ जानते हैं। आपका वर पाकर तारक राक्षस ने ऐसा सिर उठा रखा है मानो संसार का नाश करने के लिए धूमकेतु निकल आया हो। सूर्य, चंद्र, पवन, समुद्र, नाग, इंद्र सभी उसकी सेवा करते हैं, फिर भी वह सबको सताता रहता है। देवताओं की स्त्रियां उसकी जेल में हैं। देवता उसके डर से बाहर नहीं निकलते। विष्णु का चक्र भी उसे नष्ट नहीं कर सका। हे प्रभो, हम उस राक्षस को नष्ट कर सकें, ऐसा एक सेनापति चाहते हैं।"

वृहस्पति जब सब-कुछ कह चुके तब ब्रह्मा बोले, "आप लोगों की इच्छा अवश्य पूरी होगी पर कुछ दिन रुकना पड़ेगा। महादेवजी का पुत्र ही तारकासुर का नाश कर सकता है। इसलिए आप लोग ऐसा प्रयत्न करें, जिससे शंकर महाराज पार्वती से विवाह करलें।"

यह कहकर ब्रह्माजी चले गये। देवता लोग भी स्वर्ग लौट आये। वहां पहुंचकर इंद्र ने कामदेव को बुला भेजा और उसे सब बातें समझाकर कहा, "अब

तुम ऐसा जतन करो जिससे समाधि में बैठे हुए महादेवजी के मन में पार्वती के प्रति प्रेम पैदा हो जाय।"

"जो आज्ञा," कहकर कामदेव ने उस कठिन काम को करना स्वीकार कर लिया और वह वसंत को लेकर उस ओर चल पड़ा जिस ओर शिवजी बैठे तप कर रहे थे। उसकी पत्नी रति भी साथ थी, पर उसके मन में डर समाया हुआ था कि न जाने आज क्या होनेवाला है। उधर वसंत के आते ही उस तपोवन में फूल खिल उठे। भौंरे गूंजने लगे। कोयल कूकने लगी। अप्सराओं ने भी अपना नाच-गान आरंभ कर दिया। सब विचलित हो उठे, पर शिवजी उसी तरह ध्यान-मग्न समाधि में बैठे रहे। कामदेव ने देखा—उन्होंने वीरासन लगा रखा है, शरीर सीधा और अचल है और वह दोनों कंधे झुकाकर अपनी गोद में दोनों हथेलियों को ऊपर किये स्थिर बैठे हैं। दृष्टि नाक के अगले भाग पर जमी है। वह तब अविनाशी आत्मा की ज्योति को अपने भीतर देख रहे थे। उनका यह रूप देखकर कामदेव डर गया, पर तभी उसने पार्वती को देखा। उनका रूप रति को भी लजानेवाला था। वह जैसे ही

आश्रम के द्वार पर पहुंचीं, वैसे ही महादेवजी ने समाधि तोड़ी। उनकी आज्ञा लेकर नंदी पार्वती को अंदर ले गया। पार्वती ने उनकी पूजा करके उन्हें प्रणाम किया। शंकर प्रसन्न होकर बोले, "तुम्हें ऐसा पति मिलेगा, जैसा किसी भी स्त्री को नहीं मिला।"

पार्वती लजा गईं। उस समय वह बहुत सुंदर लग रही थीं। उन्हें देखकर शंकर का मन डोल उठा। पर वह तुरंत संभल गये। उन्होंने चारों ओर देखा— मेरे मन में यह खोट कैसे आया? देखते क्या हैं कि एक ओर कामदेव खड़ा है। बस तप में बाधा डालने-वाले कामदेव पर वह एकाएक क्रुद्ध हो उठे। उनका तीसरा नेत्र खुल गया और उसमें से निकलनेवाली आग ने निमिष मात्र में कामदेव को जलाकर राख कर दिया। यह देखकर रति मूर्च्छित हो गई।

इसके बाद शिवजी तुरंत वहां से चले गये। भय के कारण नेत्र मूंदे, उदास मन पार्वती भी घर लौट चलीं। उनके लौट जाने पर रति की मूर्च्छा टूटी। पति को जला हुआ देखकर वह बेहाल हो उठी। मिट्टी में लोट-लोटकर बिलख-बिलखकर वह ऐसे रोई, जैसे सारी वन-भूमि उसके साथ रो रही हो। वसंत उसे ढाढ़स बंधाने आया तो वह और भी फूट-

फूटकर रोने लगी। स्वजनों को देखकर दुख ऐसे ही बढ़ जाता है, जैसे किसी रुकी वस्तु को बाहर निकलने के लिए मार्ग मिल जाय। वह बार-बार वसंत से अपने लिए चिता करने को कहने लगी। वह पति के साथ सती होना चाहती थी।

इसी समय आकाशवाणी हुई, "हे रति! थोड़े दिन बाद तुम्हारा पति तुम्हें मिल जायगा। ब्रह्मा के शाप के कारण ही शिवजी ने उसे भस्म किया है। जब पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी उनसे विवाह कर लेंगे, तब कामदेव को भी वह पहले-जैसा शरीर दे देंगे।"

यह सुनकर रति ने प्राण देने का विचार छोड़ दिया। शाप बीतने की अवधि की वह उसी प्रकार बाट जोहने लगी, जैसे दिन में दिखाई देनेवाले तेज-हीन चंद्रमा की किरण सांझ होने की बाट जोहती है।

: ३ :

कामदेव के भस्म हो जाने के बाद पार्वती ने भी कठिन तप करके शिवजी को प्रसन्न करने का निश्चय किया। उनकी माता ने उन्हें बहुत समझाया, पर वह नहीं मानीं। पिता तो सब-कुछ जानते ही थे। उन्होंने

पार्वती को तप करने की आज्ञा दे दी। पार्वती ने राजसी वेश उतारकर वल्कल-वस्त्र पहन लिये और जटा रख ली। कमर में उन्होंने मूंज की तगड़ी बांधी और हाथों में रुद्राक्ष की माला ली। वह हाथों का तकिया बनाकर बिना बिछी हुई भूमि पर बैठी-बैठी सो जाती थीं।

वह पौधों को प्रेम से सींचतीं। हरिणों को अपने हाथ से दाना खिलातीं। जब वह वल्कल-वस्त्र पहन-कर पाठ-पूजा करतीं, तो दूर-दूर से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उन्हें देखने आते। उनके आश्रम में सदा हवन की अग्नि जलती रहती। लेकिन जब उन्होंने देखा कि इस सरल तप से कुछ नहीं होगा, तो उन्होंने बड़ी कठोर तपस्या करनी आरंभ कर दी। गरमी की ऋतु में वह अपने चारों ओर आग जलाकर उसके बीच में खड़ी रहने लगीं। वर्षा ऋतु में वह केवल वर्षा का जल पीतीं। घनघोर वर्षा और तूफानों में वह खुले मैदान में शिला पर लेटी रहतीं। पूस की ठिठरती रातें वह जल में बैठकर बिता देतीं। अपने-आप गिरे हुए पत्ते खाकर रहना तप की पराकाष्ठा समझी जाती है, पर पार्वतीजी ने पत्ते खाने भी छोड़ दिये।

इसी बीच एक दिन ब्रह्मचर्य के तेज से दीप्त

एक ब्रह्मचारी वहां आया। पार्वती ने बड़े आदर से उसकी पूजा की। पूजा के बाद उस ब्रह्मचारी ने एक-टक पार्वतीजी को देखते हुए बोलना शुरू कर दिया। आश्रम और उनके तप के बारे में बहुत-कुछ कहने के बाद उसने पूछा, "आपने ब्रह्मा के वंश में जन्म लिया है। तीनों लोकों की सुंदरता आपके शरीर में भरी है। धन इतना है कि पूछना ही क्या? फिर बताइये आप तप क्यों कर रही हैं? आपको किसीसे बदला नहीं लेना। आपके लिए स्वर्ग की इच्छा व्यर्थ है। आप यदि अपने योग्य पति पाने के लिए तप कर रहीं हैं तो वह भी व्यर्थ है, क्योंकि मणि किसीको खोजने नहीं जाती, लोग स्वयं मणि को खोजने जाते हैं।

"आप लंबी सांस ले रही हैं। समझा, आप योग्य पति पाने के लिए तपस्या कर रही हैं। पर वह ऐसा कौन है जिसे आप चाहती हैं और वह आपको नहीं मिलता? ऐसा निर्दयी कौन है, जो तपस्या से सूखे आपके शरीर को देखकर रो नहीं पड़ता? मालूम होता है उसे अपनी सुंदरता का झूठा घमंड है। लेकिन आप कबतक तप करती रहेंगी? मैंने बहुत तप किया है। उसका आधा भाग आप ले लीजिये और अपनी सब साधें पूरी कर लीजिये। पर यह बता

दीजिये कि वह है कौन ?"

ये बातें सुनकर पार्वतीजी लजा गईं और उन्होंने अपनी सखी को उस प्रश्न का उत्तर देने का इशारा किया। सखी ने बताया, "हे साधु ! यदि आप सुनना ही चाहते हैं तो मैं बताती हूं कि हमारी सखी महादेवजी से विवाह करने का निश्चय कर चुकी हैं। उसीके लिए यह ऐसा कठोर तप कर रही हैं।"

पार्वती के मन की बात जानकर ब्रह्मचारी तनिक भी प्रसन्न नहीं हुआ; बल्कि चकित होकर पूछने लगा, "क्या यह सच है ? कहीं आपकी सखी हंसी तो नहीं कर रहीं ?"

बहुत देर तक पार्वतीजी कुछ न बोलीं, फिर धीरे-धीरे उन्होंने कहा, "आपने जैसा सुना है, मेरे मन में वैसा ही ऊंचा पद पाने की साध जाग उठी है और यह तप मैं उन्हींको पाने के लिए कर रही हूं।"

यह सुनकर उस ब्रह्मचारी ने महादेवजी की निंदा करनी शुरू कर दी। बोला, "वह श्मशान में रहते हैं, जहां भूत-प्रेतों के बाल बिखरे रहते हैं। उनके तीन आंखें हैं, उनके जन्म का कोई ठिकाना नहीं। वह सदा नंगे रहते हैं। इसीसे आप समझ लेंगी कि उनके घर में क्या होगा ? हे मृगनयनी !

वर में जो गुण खोजे जाते हैं, उनमें से एक भी महादेवजी में नहीं है ।"

महादेवजी की निंदा सुनकर पार्वतीजी क्रोध से कांप उठीं । बोलीं, "आप उन्हें न जानते हैं और न पहचानते हैं । खोटे लोग ही महात्माओं के अनोखे कामों को बुरा बताते हैं ।" और बहुत-सी बातें कह-कर अंत में उन्होंने कहा, "आपने उन्हें जैसा सुना वह वैसे ही सही, पर मेरा मन तो उन्हींमें रम गया है । जब किसीका मन किसी पर लग जाता है तो वह किसीके कहने-सुनने पर ध्यान नहीं देता ।"

ब्रह्मचारी ने फिर कुछ कहना चाहा, पर तभी पार्वतीजी सखी से बोलीं, "इनसे कह दो अब एक शब्द भी न बोलें । जो बड़ों की निंदा करता है, वही पापी नहीं होता, जो सुनता है उसे भी पाप लगता है ।"

यह कहकर वह उठीं; लेकिन जैसे ही उन्होंने आगे बढ़ने को कदम उठाया, वैसे ही महादेवजी ने अपना सच्चा रूप धारण कर लिया और मुस्कराते हुए उनका हाथ थाम लिया । उन्हें देखकर पार्वतीजी सिहर उठीं । आगे न बढ़ सकीं । न पीछे हट सकीं । शिवजी बोले, "हे कोमलांगी ! तुमने मुझे अपने

तप से मोल ले लिया है। मुझे अपना दास समझो।"

इतना सुनना था कि पार्वतीजी के सब कष्ट दूर हो गये। उन्होंने सखी से कहलवाया कि उनका विवाह करने का अधिकार उनके पिता को है। शिवजी उनसे ही बात करें।

और वह चली गईं। उनके जाने के बाद महादेवजी ने सप्त ऋषियों को याद किया। अरुंधती सहित वे सातों ऋषि तुरंत ही वहां आ पहुंचे। उन्होंने प्रेम से पुलकित होकर शिवजी की पूजा की और पूछा, "आपने हमें किसलिए याद किया? कहिये हमें क्या करना होगा?"

महादेवजी मंद-मंद मुस्कराये और उन्होंने सब बातें सप्त ऋषियों को समझाकर कहा, "आप लोग मेरी ओर से जाकर हिमालय से पार्वतीजी को मांग लीजिये और महाकोशी नदी के झरने पर आकर मुझसे मिलिये।"

सप्त ऋषि तुरंत हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ की ओर चल पड़े। हिमालय ने बड़े आदर से विधिपूर्वक उनकी पूजा की और फिर बड़े विनय से उनके आने का कारण पूछा। सप्त ऋषियों में बातचीत करने में सबसे चतुर अंगिरा ऋषि थे।

उन्होंने हिमालय की प्रशंसा करते हुए, बड़ी कुशलता से शिवजी का संदेश कह सुनाया। बोले, "उनसे अपनी पुत्री का विवाह करके आप उन महादेवजी से भी बड़े बन जाइये, जो स्वयं किसीकी स्तुति नहीं करते, पर संसार जिनकी स्तुति करता है।"

हिमालय तो यही चाहते थे। मेना ने भी इस संबंध को स्वीकार कर लिया। फिर तो तीन दिन बाद विवाह की तिथि निश्चित करके ऋषि लोग वहां से महादेवजी की ओर चल पड़े।

: ४ :

तीन दिन पीछे हिमालय ने अपने भाई-बंधुओं को बुलाकर शंकरजी के साथ अपनी बेटी का विवाह कर दिया। वह लग्न के सातवें घर में पड़ी हुई शुक्ल पक्ष की शुभ तिथि थी। नगर ऐसा सजाया गया था मानो स्वर्ग ही उतर आया हो। पार्वतीजी के शृंगार का क्या कहना! नाना प्रकार के रत्नजड़ित आभूषण और मणि-मुक्ताओं के धारण करने से उनकी स्वाभाविक सुंदरता और भी निखर उठी। अपने उस रूप को देखकर वह स्वयं विस्मित हो उठीं। उनकी मां मेना भी आनंद से बेसुध हो गईं।

इधर हिमालय विवाह के प्रारंभिक काम निबटा

रहे थे, उधर कैलास पर महादेवजी की बारात की तैयारी हो रही थी। उन्होंने कोई शृंगार नहीं किया बल्कि अपनी शक्ति से अपने ही वेश को विवाह-योग्य बना लिया। वह अपने बैल पर बैठकर ही चले। जब गणों ने मंगल-तुरही बजाई, तब सूर्य ने विश्वकर्मा द्वारा बनाया हुआ छत्र शिवजी पर लगा दिया। गंगा-यमुना चंवर डुलाने लगीं। ब्रह्मा-विष्णु जय-जयकार करने लगे। इंद्रादि देवता भी दर्शन करने आ पहुंचे। आगे-आगे विश्वावसु आदि प्रसिद्ध गंधर्व गीत गाते चल रहे थे।

क्षण-भर में ही वे सब ओषधिप्रस्थ पहुंच गये। पर्वतराज हिमालय इस संबंध से बड़े प्रसन्न थे। बंधु-बांधवों सहित बड़े प्रेम से उन्होंने बारात का स्वागत किया। नगर की स्त्रियां सुध-बुध खोकर उन्हें देखने दौड़ीं और शिवजी की सुंदरता को सराहने लगीं। स्त्रियों की मीठी-मीठी बातें सुनते हुए महादेवजी हिमालय के घर पहुंचे। सबसे पहले हिमालय ने उन्हें वस्त्रादि प्रदान किये। फिर रनिवास के सेवक उन्हें पार्वतीजी के पास ले गये। वहां पुरोहितजी ने विधिपूर्वक दोनों को परिणय-सूत्र में बांध दिया। दोनों ने सबसे पूर्व ब्रह्माजी को प्रणाम

किया। फिर सब लोगों ने विधिपूर्वक उनपर गीले और पीले अक्षत छिड़के। लक्ष्मीजी उनपर कमल का छत्र लगाकर खड़ी हो गईं। सरस्वतीजी उनकी प्रशंसा करने लगीं। अप्सराओं ने एक सुंदर नाटक खेला। उसके बाद देवताओं ने उनसे कामदेव को फिर से जिला देने की प्रार्थना की।

अब महादेवजी उस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सके। वह एक माह तक तो आनंदपूर्वक हिमालय के घर पर रहे और फिर विदा मांगकर यहां-वहां घूमने लगे। मेरु पर्वत, मंदराचल, कैलास, मलय पर्वत, नंदनवन होते हुए वह गंधमादन पर्वत पर जा पहुंचे। वहां बहुत काल तक वह पार्वतीजी के साथ विहार करते रहे। कोई उनके दर्शन करने आता तो भी वह बाहर न निकलते। यह देखकर देवताओं ने अग्नि को उनके पास भेजा। वह कबूतर का रूप धर-कर वहां गया। कबूतर को देखकर शंकर पहले तो प्रसन्न हुए, पर जब उन्हें पता लगा कि वह अग्नि है तो वे क्रुद्ध हो उठे। अग्नि ने यह देखा तो अपना असली रूप प्रकट कर दिया और सब बातें सच-सच कह दीं, "हे भगवन्! इंद्रादि सब देवता आपके दर्शन के लिए बैठे बाट जोह रहे हैं। उन्हींके कहने

से मैं आपको ढूंढ़ने निकला हूं। मुझे क्षमा कीजिये। सोचिये कि शत्रुओं से हारकर और अपमानित होकर आपकी शरण में आये हुए देवता भला कब तक मन मारे बैठे रहेंगे ?"

अग्नि की ये सब बातें सुनकर उनका क्रोध जाता रहा। उचित अवसर पर उन्होंने देवताओं को दर्शन दिये और फिर वहां से चलकर वह कैलास आ गये।

: ५ :

उनके जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके छः मुख थे। उसे गोद में लिये पार्वतीजी ऐसी सुंदर लगती थीं जैसे आकाश-गंगा में कमल खिल उठा हो या पूर्व दिशा में चंद्रमा निकल आया हो। उसके जन्म के उपलक्ष में एक बड़ा उत्सव मनाया गया। वह उत्सव इतना बड़ा था कि एक ओर तो संसार के सभी चर और अचर प्राणी हर्ष से फूल उठे, दूसरी ओर तारक राक्षस की राजलक्ष्मी कांप उठी।

माता-पिता को सुख देता हुआ वह बालक धीरे-धीरे बढ़ने लगा। वह अपनी बाल-लीलाओं से सबको रिझाया करता। उसकी लीलाओं में आनंद लेते हुए शंकर-पार्वती इतने मगन हो उठते कि उन्हें पता ही

नहीं रहता कि कब दिन चढ़ा और कब रात आई। छठे दिन ही वह बालक बड़ा विद्वान और जवान हो गया। छः ही दिन में उसे सब शास्त्र और शस्त्र-विद्याएं भली प्रकार आ गईं।

तब एक दिन सब देवताओं को साथ लेकर, तारक राक्षस के डर से दुखी इंद्र, लुकते-छिपते शंकरजी के पास आये। उस समय वह बहुत-से बड़े-बड़े गणों से घिरे बैठे थे जौर बड़े चाव से कुमार कार्तिकेय की शस्त्र और अस्त्र-विद्या का अभ्यास देख रहे थे। उन्हें देखकर इंद्र को आशा होने लगी कि अब हम शत्रु को अवश्य जीत लेंगे। नंदी के बताने पर जब शंकर ने उन्हें देखा, तो सबने धरती पर माथा टेककर प्रणाम किया। शिवजी ने पूछा, "आप उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं! इतने मनस्वी, महिमाशाली और स्वर्ग-निवासी होकर भी, स्वर्ग छोड़कर साधारण मनुष्यों के समान इधर-उधर क्यों मारे-मारे फिर रहे हैं? कहीं आपने तारक से झगड़ा तो नहीं कर लिया? यदि ऐसी बात है तो उसको मैं ही वश में कर सकता हूं।"

यह सुनकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए। इंद्र ने उन्हें सब कथा कह सुनाई और निवेदन किया,

"भगवन् ! जैसे गरमी के सूर्य की तपन से जले हुए लता-वृक्षों को नये बादल हरा कर देते हैं, वैसे ही अपने पुत्र को हमारा सेनापति बनाकर आप भी हमें जिला दीजिये ।"

इंद्र के मुंह से तारक के अत्याचारों की कथा सुनकर शंकर क्रोध से भर उठे। बोले, 'मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। मैंने पार्वती से इसलिए विवाह किया था कि इनका पुत्र तारक को मार डाले। इस-लिए आप लोग उसे सेनापति बनाकर शत्रु का नाश कीजिये।" और उन्होंने पुत्र से कहा, "तारक देवताओं का शत्रु है। जाओ, तुम उसे मार डालो।"

कार्तिकेय तुरंत तैयार हो गये। उन्हें पाकर इंद्र आनंद से खिल उठे।

युद्ध का बाना पहनकर जब पुत्र ने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया तो उसे आशीर्वाद देकर शंकर बोले, "हे वीर पुत्र, जाओ ! शत्रु को मार कर इंद्र को फिर से उनके पद पर आसीन करो।" पार्वतीजी ने पुत्र को कसकर हृदय से लगाते हुए कहा, "पुत्र ! युद्ध में जय पाकर यह सिद्ध कर दो कि मैं वीर माता हूं।"

इस प्रकार विदा होकर कुमार देवताओं के साथ

स्वर्ग-लोक पहुंचे। द्वार पर पहुंचकर देवता लोग ठिठक गये। तारक के डर से वे अंदर नहीं जा सके और कातर होकर कुमार की ओर देखने लगे। कुमार ने आगे बढ़कर कहा, "अब डरने की क्या बात है? आप निडर होकर आगे बढ़िये। मैं तो चाहता हूं कि तारक से यहीं भेंट हो जाय और मैं उसका नाश कर डालूं।" कुमार की ये बातें सुनकर देवता बहुत प्रसन्न हुए। इंद्र और नारद मुनि तो वस्त्र बदलकर उनके मित्र हो गये। गंधर्व, विद्या-धर और सिद्ध उनकी बड़ाई करते हुए उनकी जय की कामना करने लगे। इसके बाद जिस प्रकार त्रिपुरासुर का नाश करने के लिए जाते समय शंकर के पीछे उनके गण चले थे, उसी प्रकार तारक को मारने की इच्छा करनेवाले कुमार के पीछे देवताओं नें स्वर्ग में प्रवेश किया। सबसे पहले उन्होंने आकाश-गंगा को देखा। बहुत दिन बाद उसे देखने पर इंद्र बड़े प्रसन्न हुए। कुमार भी बड़े अचरज से उसे देखने लगे। फिर भक्ति-भाव से उसे प्रणाम किया और उसकी वंदना की। उसके आगे नंदनवन था। तारक ने वृक्ष काट-कर उस सुंदर वन की शोभा नष्ट कर दी थी। उसकी यह दुर्दशा देखकर कुमार बड़े क्रुद्ध हुए। विश्व की

सबसे श्रेष्ठ नगरी अमरावती की तो और भी बुरी दुर्दशा हो रही थी। उसके लीला-उपवन नष्ट कर दिये गये थे और ऊंचे-ऊंचे भवन गिरा दिये गये थे। कुमार का क्रोध और भी बढ़ गया। वह युद्ध के उतावले हो उठे और इसी अवस्था में उन्होंने देवताओं की राजधानी में प्रवेश किया। भीतर और भी बुरा हाल था। इंद्र उन्हें अपने वैजयंत नाम के सुंदर भवन में ले गये। वहां कल्प-वृक्ष स्वयं बंदनवार बना हुआ था और ढेर-के-ढेर पारिजात-पुष्प बिखरे पड़े थे। वहीं पर कुमार ने देव-दानव वंश के सबसे बूढ़े महर्षि कश्यप और देवताओं की आदि माता अदिति के चरणों में प्रणाम किया। इंद्र-पत्नी शची तथा दूसरे देवताओं की पत्नियों को भी उन्होंने प्रणाम किया। महर्षि कश्यप की जो दूसरी सात और पत्नियां थीं, उन्हें भी कुमार ने प्रणाम किया। सबने उनको यही आशीर्वाद दिया, "तुम्हारी जय हो।"

इसके पश्चात देवताओं ने विधिपूर्वक कुमार को अपनी सेना का सेनापति नियुक्त किया। उनके यह पद संभालते ही सबको विश्वास हो गया कि अब उनकी जीत निश्चित है। इस विश्वास ने उनका सब शोक दूर कर दिया।

: ६ :

युद्ध की तैयारी होने लगी। कुमार के कहने पर सब देवताओं ने अस्त्र-शस्त्र बांधने शुरू कर दिये। धनुषधारी पराक्रमी कुमार 'विजित्वर' नामक रथ पर सवार हुए। वह रथ मन से भी अधिक वेग से चलता था और जो उसपर चढ़ता था, उसकी विजय निश्चित थी। कुमार के सिर पर सोने का शत्रुनाशक छत्र लगा हुआ था। उनके दोनों ओर चंवर डुलाये जा रहे थे। उनके आगे-आगे किन्नर, सिद्ध और चरण उनकी प्रशंसा में गीत गाते चल रहे थे।

देवता लोग भी अपने-अपने शक्तिशाली वाहनों पर सवार होकर उनके पीछे-पीछे चले। हाथ में पर्वतों को विदीर्ण करनेवाला वज्र लिये इंद्र ऐरावत पर सवार थे। मदोन्मत्त मेढ़े पर सवार अग्नि के हाथ में भयंकर दहकता हुआ अस्त्र था। यम राज काले-कलूटे भैंसे पर सवार थे और उनके हाथ में दंड था। वह भैंसा अपने सींगों से बादलों को फाड़ता हुआ चलता था। नैऋत राक्षस तारक से अप्रसन्न होकर इधर आ मिला था। वह भी मतवाले प्रेत पर चढ़कर कुमार के पीछे-पीछे चला। वरुण घड़ियाल पर बैठे थे और उनकी अचूक फांस उनके हाथ में थी। पवन का वाहन

हरिण था, जो धरती और आकाश सब कहीं बिना रुके चौकड़ी भरता रहता था। कुबेर गदा लेकर पालकी पर सवार हुए और हाथों में पिनाक, धनुष व जलते हुए त्रिशूल लेकर ग्यारहों रुद्र बैलों पर बैठे थे। सब देवता प्रसन्न थे और उछलते-कूदते चल रहे थे। उनके नगाड़ों की घोर ध्वनि की गूंज सुनकर दैत्यों की राज-लक्ष्मी भी कांप उठी। सेना के चलने से जो धूल उड़ रही थी उससे आकाश भर उठा और ऐसा सुंदर दिखाई देने लगा मानो संध्या हुए बिना ही सुनहले बादलों के झुंड-के-झुंड उमड़ आये हों।

इस प्रकार युद्ध करने को उत्सुक देवराज की सेना सुमेरु पर्वत से नीचे उतरी। उस समय अमरावती के निवासी उन्हें बड़े चाव से देख रहे थे। पहले तो वह सेना धरती पर फैल गई; लेकिन जब वहां न समा सकी तो आकाश में जा पहुंची। जब वहां भी स्थान की कमी हो गई तो वह घबरा उठी। हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट और रथों की घड़-घड़ाहट से सब ऐसे परेशान हुए मानो सांस घुट रही हो। चारों ओर कोलाहल मचने लगा। संसार-भर में हड़बड़ी फैल गई। लेकिन सेना बढ़ती ही जा रही थी। ऐसा लगता था मानो असुरों के महानाश के समय

घनघोर स्वर में गरजता हुआ महासागर उमड़ चला हो ।

उधर जब दैत्यों को पता चला कि कार्तिकेय को सेनापति बनाकर इंद्र युद्ध करने आ रहे हैं, तो वहां बड़ी खलबली मची। उन्होंने तुरंत तारक को इस बात की सूचना दी । तारक हंस पड़ा, "जो आजतक मुझे नहीं जीत सका, वह अब कुमार के भरोसे मुझसे लड़ने चला है ।" यह कहते-कहते उसके ओठ कांपने लगे और उसने अपने सेनापतियों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी । तुरंत ही बड़े-बड़े दैत्य अस्त्र-शस्त्र बांधकर तारकासुर के पास आ पहुंचे । महायुद्ध के समुद्र में हलचल मचाने में सब एक-से-एक बढ़ कर थे । उन्हें देखकर तारक भी अपने रथ पर चढ़कर चल पड़ा । वह रथ अकेला ही इंद्र की सेना को तहत-नहस कर सकता था । पर्वत, समुद्र सब कहीं वह जा सकता था । उसकी घरघराहट सुनकर हाथी चिघाड़ना भूल जाते थे । दैत्यों की सेना उसके पीछे-पीछे चली । यह समुद्र के गर्जन के समान कोलाहल मचा रही थी । जब वे चले तो उनके आगे ऐसे बुरे-बुरे असगुन होने लगे जिनसे पता लगता था कि तारक किसी भारी विपत्ति में डूबनेवाला है । गिद्ध और

कौए पांति बांध-बांधकर उनपर मंडरा रहे थे। आकाश में आंधियां उठ रही थीं। भयंकर सांप सेना का मार्ग काटकर निकल जाते थे। दिन के समय ही तारे बड़े वेग से टूटने लगे। बिना बादल ही भयंकर बिजली तड़प उठी। आकाश से आग, लहू और हड्डियों की वर्षा होने लगी। चारों ओर कान फाड़ देनेवाला हल्ला होने लगा। तभी ऐसा भूकंप आया कि समुद्र हिलोरें लेने लगा, पर्वतों में दरारें पड़ गईं, हाथी-घोड़े लड़खड़ाने लगे। यह सब हुआ, पर उस दैत्य ने युद्ध में जाने से मुंह नहीं मोड़ा। हवा के झोंके से उसका राज-छत्र भूमि पर गिर पड़ा। उसके झंडे पर भयंकर काला सांप आ लिपटा। उसके रथ में आग लग गई पर वह फिर भी नहीं लौटा। यहांतक कि जब आकाश-वाणी ने कार्तिकेय की प्रशंसा करके युद्ध में जाने से रोका, तब भी उसपर कोई असर नहीं हुआ। रथ बढ़ाकर वह शीघ्र ही इंद्र के सामने जा पहुंचा।

भयंकर युद्ध मचने लगा। दोनों सेनाएं एक-दूसरे पर टूट पड़ीं। समुद्र के समान हिलोरें लेती हुई दैत्यों की सेना देखकर देवता डर गये, पर निडर कार्तिकेय समझ गये कि इसमें कुछ जान नहीं है। उन्होंने देवताओं को इशारा किया कि डरो मत।

युद्ध करते चलो। ऐसा ही हुआ। प्रलय के समय जैसे दो समुद्र एक दूसरे से टकराकर बढ़ चलते हैं, वैसे ही ये दोनों सेनाएं बढ़ रही थीं। पैदल पैदल से, रथी रथी से, घुड़सवार घुड़सवार से और हाथी-सवार हाथी-सवार से भिड़ गये। चारण वीर सैनिकों की प्रशंसा में गीत गाने लगे।

उस समय वहां का दृश्य बड़ा ही अद्भुत था। सूर्य की किरणें पड़ने से लहू से लाल तलवारें चमक उठती थीं। भयंकर भाले ऐसे लगते थे, जैसे यम की लपलपाती जीभ। विषैले बाणों से आकाश भर गया था। योद्धा लोग अपनी जोड़ी के रणबांकुरों को ढूंढ़ रहे थे और नाना प्रकार से वीरता दिखा रहे थे। जिनके सवार मार डाले गये थे, वे मनमाना घूमनेवाले हाथी ऐसे लग रहे थे जैसे प्रलय की आंधी में पहाड़ इधर-उधर उड़ रहे हों। जब वे परस्पर टकराते तो उनके दांतों की चोट से ऐसी आग उठती कि मरे हुए सैनिक जल उठते। घुड़सवार भाले से एक-दूसरे पर चोट करते। रथी धनुष-बाण द्वारा एक-दूसरे का सिर काट डालते। सिर कट जाने भी पर धड़ बहुत देर तक तलवार लिए रणभूमि में नाचते रहते।

इस प्रकार जब देव-दानवों का युद्ध शुरू हो गया

और वे रक्त की नदी के तीर पर ही डूबने लगे, तब देवताओं का शत्रु तारक लाल-लाल आंखें करके, युद्ध करने की इच्छा से, इंद्रादि के सामने आ डटा। वह भयंकर रूप से अट्टहास करता हुआ धुंआधार बाण बरसाने लगा। इंद्रादि दिग्पालों के बाण वह ऐसे काट देता था, जैसे बहुत-से गरुड़ सांपों के झुंड को काट देते हैं। उसके छोड़े बाण सांप की भांति भयंकर बन कर देवताओं के गले में कसकर चिपट गये। उनका दम घुटने लगा और वे कार्तिकेय के पास दौड़े। उनके आंख भर देख लेने से नाग-फांस के फंदे खुल गये। यह देखकर वह दैत्य क्रुद्ध हो उठा और तुरंत उनके सामने पहुंचा। बोला, "मेरे बाणों से बिंधकर क्यों प्राण देना चाहते हो ? आओ यहां से भागकर माता-पिता की गोद में छिप जाओ।" यह सुनकर कार्तिकेय के नेत्र जल उठे। वह बोले, "घमंड में न रहना दैत्य-राज ! मैं तुम्हारे बल की थाह लेने आया हूं। उठाओ अपने अस्त्र।"

फिर तो भयंकर बाण-युद्ध आरंभ हो गया पर तारक शंकर-पुत्र कार्तिकेय को न जीत सका। उनका प्रबल प्रताप देखकर उसने तुरंत माया-युद्ध आरंभ कर दिया और अंधड़ चलानेवाला 'वायव्य' नाम का

बाण धनुष पर चढ़ाया। उस अंधड़ ने देव-सेना को त्रस्त कर दिया। हाहाकार मच गया। पर कुमार कार्तिकेय ने देखते-देखते ऐसा जादू किया कि जैसे अंधड़ आया ही नहीं था। इसी प्रकार उन्होंने तारक के अग्नि-वाण को वरुणास्त्र चलाकर व्यर्थ कर दिया। अब तो उस क्रोधी तारक ने रथ छोड़ दिया और तलवार लेकर कुमार पर टूट पड़ा। तब उन्होंने हंस-कर प्रलय की अग्नि-जैसी भयंकर अपनी शक्ति उसपर फेंकी। वह ठीक तारक के हृदय में जाकर लगी। उसकी चोट से वह तुरंत मरकर गिर पड़ा। यह देखकर देवता हर्ष से उछल पड़े। उनके मुख खिल उठे और आनंद में झूमते हुए वे कुमार की भुजाओं के बल की बड़ाई करने लगे। आकाश से कल्पतरु के फूल बरसने लगे।

इस प्रकार विजयी कार्तिकेय ने जब, तीनों लोकों के हृदय में कांटे के समान खटकनेवाले, तारक को मार डाला तो इंद्र फिर स्वर्ग के स्वामी हो गये। देवता उन्हें प्रणाम करने लगे।

●

समाज विकास - माला की पुस्तकें

१. बदरीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. निषाद और शबरी
११. गांव सुखी, हम सुखी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तंदुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी - मानस - मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७, राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिल-जुलकर काम करो
५७. कालापानी
५८. पावभर आटा
५९. सवेरे की रोशनी
६०. भगवान के प्यारे
६१. हारूं-अल-रशीद
६२. तीर्थंकर महावीर
६३. हमारे पड़ोसी
६४. आकाश की बातें
६५. सच्चा तीरथ
६६. हाजिर जवाबी
६७. सिंहासन-बत्तीसी भाग १
६८. सिंहासन-बत्तीसी भाग २
६९. नेहरूजी का विद्यार्थी - जीवन
७०. मूरखराज
७१. नाना फड़नवीस
७२. गुरु नानक

मूल्य प्रत्येक का छः आना

'संस्कृत-साहित्य-सौरभ' की पुस्तकें

१. कादंबरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुंतला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानंद
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित्
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार-चरितः भाग १
१५. दशकुमार-चरितः भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल-वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता
२७. रावणवध
२८. सौंदरनंद
२९. कुंदमाला
३०. यशस्तिलक

मूल्य प्रत्येक का छः आना

छःआना